रजि० नं० बी ४४४८
लाअिसेन्स नं० १५

भूदान-यज्ञ : कुछ आपत्तियां और जवाब

हरिजनसेवक

दो आना

(संस्थापक : महात्मा गांधी)

भाग १७ सम्पादक : मगनभाअी प्रभुदास देसाअी अंक १७

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-९

अहमदाबाद, शनिवार, ता० २७ जून, १९५३

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६
विदेशमें रु० ८; शि० १४

खादीके बारेमें मानसिक द्वंद्व

बंगलोरमें ता० २-६-'५३ को खादी-कार्यकर्ताओंका जो सम्मेलन हुआ, अुसमें दिये गये अपने लिखित भाषणमें मैसूर राज्यके गृह और अुद्योगमंत्री श्री अेच० सिद्धवीरप्पाने यह बतानेके बाद कि राज्यने खादीको प्रोत्साहन देनेके लिअे क्या क्या किया, कहा :

"१. हम पर यह दोष लगाया जाता है कि हम देशके सफल औद्योगीकरणको और खासकर भारतीय कपड़ा-अुद्योगको नुकसान पहुंचाकर अेक अकार्यक्षम गृह-अुद्योगको पोषण देकर जरूरतसे ज्यादा बढ़ावा दे रहे हैं। लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि यद्यपि हम खादी-अुद्योगको बढ़ाने और विकसित करनेके लिअे वचनबद्ध हैं, यह समझदारीकी बात होगी कि हम अिस समस्याके दूसरे पहलू पर भी विचार करें। हम खादीके भक्त हैं, क्योंकि अुसने हमारे देशको आजाद बनानेमें बड़े महत्त्वका भाग लिया है। सच पूछा जाय तो साम्राज्यवाद और आर्थिक शोषणकी ताकतोंसे लड़नेमें खादी हमारा सबसे शक्तिशाली हथियार रही है। लेकिन चूंकि अब लड़ाअी जीत ली गअी है, हमसे लगातार यह पूछा जाता है कि क्या हम अब भी अिस पुराने हथियारको पकड़े रहेंगे, जिसकी हथियारके नाते अब कोअी अुपयोगिता नहीं रह गअी है? हमारे आलोचक यह जानना चाहते हैं कि क्या केवल सैद्धान्तिक आधार पर हमारे देशके कपड़ा-अुद्योगको नुकसान पहुंचाकर खादीको प्रोत्साहन देना, अुसे आर्थिक मदद पहुंचाना और अुसका समर्थन करना सही है, या अैसा करनेमें कोअी निश्चित लाभ है, जिसकी वजहसे खादीको प्रोत्साहन देना अुचित हो?

"२. बेशक, अुसके अपने कुछ लाभ हैं; वह गांवोंमें मिलनेवाली मानव-शक्तिको ज्यादा पूरा काम देती है, प्राप्त कच्चे मालका ज्यादा अच्छा अुपयोग करती है, और मानवकी कुशलता और सूझ-बूझका ज्यादा अुत्पादक अुपयोग करनेके लिअे गांवके लोगोंको, जिनका खेतीका काम अमुक मौसममें ही होता है, फालतू वक्तका अुपयोगी धन्धा देती है। वह अुनकी बहुत थोड़ी आमदनीमें कुछ जोड़नेका साधन भी मुहैया करती है। वह थकावटको दूर करनेवाला सबसे कीमती मनबहलावका साधन है, जो हमें मानसिक विश्राम और शांति देता है और हमारे जैसे जीवनके संघर्षसे परेशान मानवोंको अिस अधीर, अुत्तेजित और शोरगुलवाली सभ्यताके दबाव और तनावको सहनेमें मदद करती है। अिसमें कोअी शक नहीं कि ये सब बातें खादीको अेक बहुत ही कीमती शौक या मनबहलावका साधन बना देती हैं।

"३. लेकिन भारतकी औद्योगिक प्रगति और स्वावलम्बनका विचार करते हुअे हमसे पूछा जाता है कि अेक अुद्योगके नाते खादी दूसरे किसी अुद्योगको हानि पहुंचाकर प्रोत्साहन पानेका कोअी दावा कर सकती है? क्या अैसा विश्वास करनेका हमारे पास कोअी कारण है कि खादीको पूरी मदद और समर्थन दिया जाय, तो अेक अुचित अवधिके भीतर वह भारतके कपड़ा-अुद्योगके सामने टिके रहनेकी स्थिति प्राप्त कर लेगी और अधिक मददके बिना भी अपने पांवों पर खड़ी हो सकेगी? **मेरी नम्र रायमें, खादी-अुद्योगको दी जानेवाली आर्थिक सहायता और दूसरी तरहकी मदद तभी अुचित कही जायगी, जब वह हमें अिस बातका निश्चित विश्वास दिला सके।** यहां अिकट्ठे हुअे हम खादी-प्रेमियोंका यह कर्तव्य है कि हम अिस परेशान करनेवाली समस्या पर साथ मिलकर विचार करें और अैसे रास्ते व तरीके खोज निकालें जिनसे कुशल संगठन, अुत्पादनकी सुधरी हुअी पद्धति और अुचित बिक्रीकी सुविधाओंके जरिये हमारा अत्यन्त प्रिय यह खादी-अुद्योग पूर्ण विकसित होकर हमारे देशके दूसरे अुद्योगोंके साथ दृढ़तासे अपने पांवों पर खड़ा हो सके। मैं राज्यके सारे खादी-प्रेमियोंसे अपील करता हूं कि वे अिस महत्त्वपूर्ण कार्यमें अपना सहयोग दें।"

सन् १९२७ के आसपास जब कुछ दूसरे देशी राज्योंमें खादी टोपी अपमानित की जा रही थी, तब मैसूर राज्यकी ओरसे खुद अपने अेक विभागके रूपमें खादी-अुत्पत्ति और बिक्रीका काम शुरू हुआ था, जो अब तक चल रहा है। प्रारम्भके कुछ वर्षोंमें अुसमें काफी अुत्साह और प्रगति रही, लेकिन बादमें शिथिलता आ गअी। पहले काम चरखा-संघका प्रमाणपत्र लेकर चलाया गया। बादमें अुन्होंने करीब सन् १९४५ से चरखा-संघसे सम्बन्ध तोड़ लिया। अभी कताअीकी मजदूरीकी दर चरखा-संघकी दरसे करीब तीन-चौथाअी है। आशा की जाती है कि अब भारत-सरकारकी ओरसे खादी-ग्रामोद्योग बोर्डकी स्थापना होनेके कारण अन्य स्थानोंकी तरह मैसूर राज्यमें भी खादीके कामका स्वरूप बदलेगा और अुसे अधिक प्रोत्साहन मिलेगा।

मैसूर राज्यके मंत्री महोदयके भाषणमें से जो अंश अूपर अुद्धृत किया गया है, अुसमें पाठकोंका ध्यान मैं अुस अंशकी ओर खींचना चाहता हूं जिसे मैंने मोटे टाअिपमें रखा है। जो जो राज-सत्तावाले खादी तथा ग्रामोद्योगोंका काम चलाना चाहते हैं, अुनमें से बहुतेरोंकी मानसिक दशा वही दीखती है, जो अूपर दिये हुअे मंत्री महोदयके भाषणमें चित्रित हुअी है। कपड़ेकी मिलोंके अुद्योगको आजकी तरह ही अनियंत्रित रूपसे चलने देते हुअे अगर खादी चले तो अुन्हें खादी चाहिये। हां, थोड़े समयके लिअे वे अुसे कुछ सहारा देनेको तैयार हैं। साथ ही वे यह भी जतला देते हैं कि आपको जो यह मौका मिल रहा है, अुसमें अैसी कोअी युक्ति या कला (टेकनिक) खोज लें, जिससे मिलके कपड़ेके मुकाबलेमें

www.vinoba.in

खादी अपने पैरों पर खड़ी रह सके। अैसी मदद सदा मिलना संभव नहीं है, वह थोड़े समयके लिअे ही है। नहीं तो खादीका जीवन क्षणभंगुर है। अगर अुसे अमर करना है, तो मददका यह जो अवसर मिला है, अुसमें कुछ साधना करनी हो तो कर लीजिये।

भारतके पिछले पचास वर्षोंके आर्थिक अितिहासकी ओर नजर डाली जाये, तो पाया जायगा कि लोहा, कपड़ा, शक्कर आदिके कअी केन्द्रित अुद्योगोंको करोड़ों रुपयोंका आर्थिक और अन्य प्रकारका संरक्षण मिलता रहा है। सब देशोंमें खुले व्यापारकी नीतिका लोप कबका हो चुका है। हर देशने संरक्षणकी नीति अपना ली है। भारतमें अैसे संरक्षणका विचार करनेके लिअे टेरिफ बोर्ड लगातार काम करता रहता है। कअी केन्द्रित अुद्योगोंको थोड़े वर्षोंका नाम लेकर मदद दी जाती है, बादमें मददकी मुद्दत बढ़ा दी जाती है; बीचमें थोड़े समयके लिअे बन्द रखकर फिर मदद शुरू कर दी जाती है। अैसे अुद्योगोंको अन्य कअी तरहसे जो अप्रत्यक्ष मदद मिलती है सो अलग। बेचारे खादी और ग्रामोद्योगोंका बात आती है, तब प्रचलित अर्थशास्त्रके सारे सिद्धान्त अुनके सामने आकर जारोंसे खड़े हो जाते हैं।

अुक्त मंत्री महोदयने आश्वासन मांगा है कि अभी जो खादीको ग्रेस (grace) का समय मिल रहा है, अुसमें अुसे मिलके कपड़ेके मुकाबलेमें टिकानेकी कोअी युक्ति शोध ली जाय। यह आश्वासन क्यों मांगा जा रहा है? देशमें करीब तीस वर्षोंका खादीका अनुभव मौजूद है। अुसकी प्रक्रियाओंमें सुधार करनेकी यथाशक्ति कोशिश की गअी है। अब तक कसीने यह दावा नहीं किया कि खादी कीमतमें मिलके कपड़के मुकाबलेमें टिक सकेगी। हर कोअी आसानीसे यह बात संमझ सकता है कि ग्रामोद्योगकी चीज केन्द्रित यन्त्राद्योगकी चीजकी अपेक्षा महंगी ही रहेगी।

यन्त्र-करघा (पावर-लूम) मिलका छोटा रूप है। अुसका कपड़ा भी मिलके मुकाबलेमें नहीं टिक सकता। हाथ-करघा भी नहीं टिक रहा है। तब खादीके, जिसका सूत हाथसे काता जाता है, टिक सकनेकी क्या आशा है? मान लें कि अैसा कोअी चरखा अीजाद हो जाय, जो बिजलीसे चलाया जा सके, लेकिन क्या अुसके सूतका बना हुआ कपड़ा भी मिलके कपड़की स्पर्धामें टिक सकेगा? खादी बनानेकी प्रक्रियाओंमें चरखा-सघने काफी सुधार किया है। धुनाअीमें काफी हद तक सफलता भी मिली है। चरखके सुधारका काम लगातार होता रहा है। अब अैसे चरखके कुछ अधूरे नमूने भी सूझ हैं, जो अगर सफल होकर चलन लग जायं, तो कताअीकी आज जो गति है वह काफी बढ़ जायगी। फिर भी क्या यह आशा रखी जा सकती है कि अैसे चरखके सूतसे बनी हुअी खादी मिलकी स्पर्धामें टिक सकेगी?

मंत्री महोदयके बयानके दूसरे पैरेमें खादीके गुणोंका सुन्दर वर्णन किया गया है। तथापि अन्तमें यही कहा गया है कि अगर कीमतमें खादीको न टिका सके, तो राज्यकी मददकी आशा नहीं रखनी चाहिये। अुनकी विचारसरणीमें मुझे कुछ मूलभूत दोष दीखता है। अगर कुछ समयके बाद कीमतकी स्पर्धामें खादीका टिक सकना ही सरकारी मददका अेकमात्र आधार हो, तो जब तक अुनकी चाही हुअी युक्तिका कोअी आश्वासन न दे, तब तक अुनको खादीके लिअे सरकारी पैसा खर्च नहीं करना चाहिये। जब कि अब तक कसीने अैसा आश्वासन नहीं दिया है, या आशा नहीं दिखाअी है, या दावा भी नहीं किया है, तब अिस बातका समर्थन कैसे हो सकता है कि सरकार अभीसे अुस पर खर्च करना शुरू कर दे? अुनकी विचारसरणी अुनके टीकाकारोंके चिंतनका समर्थन करती है, न कि खंडन।

मन्त्री महोदय जब खुदके बताये हुअे खादीके गुणोंकी तरफ देखते हैं, तब वे अुसकी आवश्यकता महसूस करते हैं। परन्तु जब अुसकी कीमतकी तरफ देखते हैं, तो अुसे त्याज्य मानते हैं। अुनको चाहिये कि तराजूके अेक पलड़ेमें खादीके गुणोंको रखें और दूसरेमें खादीकी कीमतको, अर्थात् पैसेको। जो पलड़ा अुन्हें भारी जंचे, अुसे स्वीकार करें। हम आशा करें कि हमारे सत्ताधीश अपने विचार साफ कर लेंगे। अगर अुन्हें कीमतके रूपमें पैसेको छोड़कर दूसरे अुपयुक्त गुण खादीमें दिखें, तो अुन गुणोंके आधार पर ही खादीको मदद दें और टीकाकारोंसे यह बात साफ-साफ कह दें।

९–६–'५३ श्रीकृष्णदास जाजू

पूनाकी भाषा-विकास परिषद्

'हरिजन' के पाठकोंसे यह कहते हुअे मुझे खुशी होती है कि पूनामें हुअी अखिल भारतीय भाषा-विकास परिषद् (जिसका जिक्र मैंने ता० १६–५–'५३ के 'हरिजन' में किया था) कअी दृष्टियोंसे सफल रही और अुसमें हमारे सामने खड़ी आजकी कुछ शैक्षणिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माणकी समस्याओं पर स्पष्ट निर्णय किये गये। परिषद् अपनी चर्चाओंमें जिन निर्णयों पर पहुंची, अुन्हें नीचे तीन विभागोंमें दिया जाता है:

अ. पारिभाषिक शब्दोंका कोश तैयार करना

"१. सारे विज्ञानोंके लिअे सारे पारिभाषिक शब्द यथासंभव संस्कृत स्रोतोंसे लिये जाने चाहियें।

२. सारे आन्तरराष्ट्रीय प्रतीकों, चिन्हों और सूत्रों (फार्मूलों) का अुपयोग अुनके आजके ही रूपमें किया जाना चाहिये।

३. आन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्द और शब्दप्रयोग अपने मूल रूपमें ही रहने दिये जायं, अगर अुनके अनुकूल भारतीय पर्याय न बनाये जा सकें।

४. जहां तक संभव हो, वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्द सारे भारतीय संघमें अेकसे ही होने चाहियें।"

ब. संघकी राजभाषाका विकास

"१. राजभाषाके शीघ्र प्रसारमें अेक बाधा लोगोंके मनमें रहा यह डर है कि वह प्रादेशिक भाषाओंका क्षेत्र हथिया लेगी। अिसलिअे यह साफ कर दिया जाना चाहिये कि हरअेक प्रदेशकी प्रादेशिक भाषा वह होगी, जिसमें वहांका सारा कामकाज चलाया जाता और सारा शिक्षण दिया जाता है।

२. चूंकि हिन्दीको भारतीय संघकी राजभाषाके तौर पर चुना गया है, अिसलिअे जिन राज्योंमें देशकी अन्य भाषायें बोली जाती हों, वहां जनतामें राजभाषाके ज्ञानके प्रसारके लिअे कदम अुठाये जाने चाहियें।

३. विधानके निर्देशके अनुसार संघकी राजभाषाका विकास करना भारतकी सारी भाषायें बोलनेवाले लोगोंका समान कर्तव्य है। यह परिषद् विश्वविद्यालयों, भाषा तथा साहित्यिक संघों, विद्या-संस्थाओं और राज्य-सरकारोंसे अपील करती है कि वे विधानकी ३५१ वीं धारामें बताअी गअी दिशामें ठोस कदम अुठानेके सम्बन्धमें तुरन्त विचार करें। यह आशा की जाती है कि अिन प्रयत्नोंके फलस्वरूप संघकी जिस राजभाषाका विकास होगा, वह मूल भाषाकी प्रकृतिके अनुकूल होगी और अिसलिअे वे लोग अुसे आसानीसे और स्वभावतः स्वीकार कर सकेंगे, जिनकी मातृभाषा हिन्दी होगी।

स. प्रादेशिक भाषाओंका ज्ञान बढ़ानेके तरीके

"यह परिषद् सिफारिश करती है कि:

(क) स्कूल जानेवाले बच्चोंकी पहली भाषा अुनकी मर्जीके मुताबिक या तो प्रादेशिक भाषा हो या अुनकी मातृभाषा हो;

www.vinoba.in

(ख) माध्यमिक शालाओंमें हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की जाय;

(ग) जहां संभव हो वहां माध्यमिक शालाओंमें प्रादेशिक भाषाके अलावा किसी दूसरी भारतीय भाषाके शिक्षणकी व्यवस्था की जाय;

(घ) हमारे सारे विश्वविद्यालयोंमें भारतीय भाषाओं और अुनके साहित्योंके अूंचे दर्जेके पाठ्यक्रमों और अनुसंधानकी व्यवस्था की जाय;

(ङ) अेक भारतीय भाषाके साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थोंका दूसरी भारतीय भाषामें अनुवाद करनेके लिअे राज्यके शिक्षा-मंत्रालयों, विश्वविद्यालयों और भाषा-संघोंमें अनुवाद-विभाग खोले जायं;

(च) पहले-पहल भारतीय भाषाओंके व्याकरण, बातचीतकी पुस्तकें और दो भाषाओंवाले शब्दकोश तैयार किये जायं;

(छ) हर प्रादेशिक भाषाका अपना अेक पत्र (जिसमें सारी भाषाओंके साहित्यका समावेश हो) हो, जिसमें अुस भाषाके बोलनेवालोंको दूसरे भारतीय साहित्योंकी गतिविधिका परिचय मिल सके;

(ज) केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारें स्कूलोंकी जरूरतें पूरी करनेके लिअे 'भारतीय भाषा शिक्षक तालीम केन्द्र' कायम करें;

(झ) केन्द्रीय और राज्य-सरकारोंको अिनाम, छात्र-वृत्तियां, ग्रान्ट और अर्थकोश खोलने चाहियें, ताकि लेखकों, संघों और विश्वविद्यालयोंको अूपरके कार्य हाथमें लेकर पूरे करनेका प्रोत्साहन दिया जा सके।"

पाठक देखेंगे कि शिक्षणके माध्यमका प्रश्न अच्छी तरह निबटाया गया है; परिषद् अिस नतीजे पर पहुंची कि विश्व-विद्यालय तकके शिक्षणके सारे दर्जोंमें शिक्षाका माध्यम प्रादेशिक भाषा होनी चाहिये। बम्बअीके राज्यपाल श्री गिरिजाशंकर वाजपेयीने, जिन्होंने परिषद्की चर्चाओंके बाद भाषण दिया, यह कहकर अिस निर्णय पर मुहर लगा दी कि अभी तक अंग्रेजी सबको मिलानेका काम करती रही है — वह अेक अैसी समान कड़ी थी, जो शासन और कानूनको मिलाकर अेक साथ रखती थी, आन्तरप्रान्तीय और आन्तरदेशीय व्यापार-वाणिज्यको बढ़ाती थी और राजनैतिक वादविवादका सर्वसामान्य वाहन थी। अब अंग्रेजीको जाना चाहिये; अिसलिअे नहीं कि वे अुसे गुलामीका प्रतीक मानते हैं या अैसी भाषा समझते हैं, जिस पर भारतके लोग अधिकार नहीं पा सकते। अुनकी रायमें अंग्रेजीको अिसलिअे जाना चाहिये कि वह देशके अधिकांश लोगोंकी बात तो दूर, हमारे बुद्धिजीवी सुशिक्षित वर्गके काफी बड़े हिस्सेकी भी भाषा कभी नहीं बन सकती।

श्री वाजपेयीने आगे कहा कि लोकशाही सबके लिअे हर क्षेत्रमें समान अवसरकी मांग करती है; वह आम जनता और अुनके प्रतिनिधियों या सेवकोंके बीच व्यवहारकी स्वतंत्रता और परस्पर अेक-दूसरेको गहराअीसे समझनेकी मांग करती है। और अिसके लिअे हमारी धरतीमें पैदा हुअी और विकास पाअी हुअी भाषाकी जरूरत है। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि हिन्दी प्रादेशिक भाषाओंकी जगह शिक्षाका माध्यम बन जाय या प्रादेशिक भाषाओं पर हिन्दीका आधिपत्य कायम हो जाय। यह मान लेनेके बाद कि मातृभाषाके अभावमें कला या विज्ञानमें मानव-मस्तिष्कका पूर्ण विकास नहीं हो सकता, बंगाली, मराठी या तामिल वगैराकी जगह हिन्दीको — जो अभी बहुत ज्यादा विकसित नहीं है — दिलानेका प्रयत्न भी भारी गुनाह होगा। ये प्रादेशिक भाषायें हरअेक अवस्थामें विचार और शिक्षणका वाहन बनी रहनी चाहियें। हिन्दीको अपने प्राणवान विकासके जरिये, जो धीरे-धीरे होना चाहिये और जो सरकारी आज्ञासे किसी पर लादा नहीं जा सकता, लोकप्रिय बननेके लिअे छोड़ दिया जाना चाहिये।

परिषद्की चर्चाओंसे जो दूसरा मुद्दा सामने आया, वह यह है कि हिन्दी अेक विषयके तौर पर पढ़ाअी जाय और जो हिन्दी भारतीय संघकी राजभाषा बननेवाली है, वह अुत्तर प्रदेशकी हिन्दी नहीं है; सारी भारतीय भाषाओंके बोलनेवालोंके मिलेजुले प्रयत्नसे अुसका विकास होगा, जो भारतीय विधानकी धारा ३५१ में दिये गये आदेशके अनुसार होगा। परिषद्की चर्चाका तीसरा महत्त्वका विषय था वैज्ञानिक शब्दोंका कोश तैयार करनेका काम। यह कहते हुअे मुझे अफसोस होता है कि दूसरे दो विभागोंसे सम्बन्ध रखने-वाली समस्याओं पर जितने पूर्णरूपसे विचार-विनिमय किया गया, अुतने पूर्ण रूपसे अिस तीसरे विभागसे सम्बन्धित समस्या पर विचार नहीं किया गया। अिसका कारण शायद यह है कि अिस प्रश्नको हल करनेकी दृष्टिमें कोअी दोष था। विज्ञानके बारेमें सामान्य ज्ञान और जनसाधारणकी जानकारीके अेक विषयके नाते विचार नहीं किया गया, बल्कि अुच्च शिक्षणमें बी० अेससी०, अेम० अेससी० वगैराकी डिग्रीका ही अेक विषय मानकर अुसकी चर्चा की गयी। अिसलिअे अैसा मालूम होता है कि परिषद्ने अपनी चर्चाओंमें केवल अिन्हीं जरूरतों पर विचार किया और स्पष्ट रूपसे यह नहीं कहा कि कलाओंकी तरह आम जनताका विज्ञान भी लोगोंकी प्रादेशिक भाषामें ही फूले-फलेगा और अैसे विकासके लिअे जरूरी पारिभाषिक शब्दसमूह संस्कृत वगैरासे अस्वाभाविक रूपमें तैयार किये हुअे विशेष शब्दजालके रूपमें नहीं होगा, बल्कि अुसकी रचना जनताकी भाषाकी प्रकृतिके अनुसार होगी, जिसमें पहलेसे सोच-विचारकर गढ़े हुअे शब्दोंको लादनेकी कोअी गुंजाअिश नहीं होती।

परिषद्ने अंग्रेजीकी पढ़ाअीके प्रश्नकी चर्चा नहीं की, यद्यपि श्री वाजपेयीने अपने भाषणमें अिस विषयको छुआ था। अुन्होंने पूछा कि क्या अंग्रेजीको बिलकुल देशनिकाला दे दिया जायगा और कहा कि अैसा करना जरूरी नहीं है, क्योंकि अिससे बाहरी दुनियाके बनिस्बत हमें कहीं ज्यादा नुकसान होगा। लेकिन अुन्हें अिस विषयमें शक था कि कूटनीतिक व्यवहार, विश्वके व्यापार-वाणिज्य और विज्ञानोंकी ज्यादा अूंची टेकनिकल कुशलता जैसे सीमित प्रयोजनोंके लिअे हाअीस्कूलों या अिंटरमीजियेट कालेजोंमें अंग्रेजी पढ़ानेकी जरूरत है। हां, अिंटरके बाद वैकल्पिक दूसरी भाषाके नाते अुसे सीखनेकी सुविधायें होनी चाहियें।

अपने भाषणके अन्तमें श्री वाजपेयीने साररूपमें कहा कि (१) प्राथमिक अवस्थासे शुरू करके शिक्षणकी **सारी** अवस्थाओंमें प्रादेशिक भाषायें शिक्षणका माध्यम होनी चाहियें; (२) माध्यमिक शिक्षणमें किसी दर्जेसे हिन्दी अनिवार्य दूसरी भाषा रहनी चाहिये; (३) अिंटरके बाद अंग्रेजी वैकल्पिक भाषा होनी चाहिये।

और अुन्होंने यह चेतावनी दी कि शिक्षणकी किसी अेक अवस्थामें या अवस्थासे तीनों भाषाओंको अनिवार्य बनानेका अर्थ होगा अपूर्णताको जन्म देना और जरूरतसे ज्यादा बोझ बढ़ाकर तथा गड़बड़ी पैदा करके किसी अेक अवस्थामें ही नहीं, बल्कि तीनों अवस्थाओंमें शिक्षा ग्रहण करनेवालोंमें 'बाबू मनोवृत्ति' पैदा करना।

अिस तरह अिस परिषद्ने शिक्षा और शासनमें हमारी भाषाओंके स्थान और अुसके अनुसार अुनके विकासके आजके मुख्य प्रश्नको हल करनेकी दिशामें कुछ ठोस काम किया है।

१२–६–'५३ **मगनभाअी देसाअी**

(अंग्रेजीसे)

www.vinoba.in

हरिजनसेवक

२७ जून १९५३

भूदान-यज्ञके खिलाफ कुछ आपत्तियां और अुनके जवाब

भूदान-यज्ञकी प्रवृत्तिके खिलाफ आलोचकोंकी ओरसे कुछ आपत्तियां अुठाअी जाती हैं। अिन आपत्तियोंका सार नीचे लिखे मुताबिक दिया जा सकता है:

१. भूदानकी प्रवृत्ति जमीन-मालिकोंसे बेजमीनोंको दान दिलानेकी प्रवृत्ति है। अुससे जमीन-मालिकोंको अुदार दान देनेकी सम्मान मिलता है और जिन बेजमीन काश्तकारोंको जमीन दी जाती है अुनके स्वाभिमानको चोट पहुंचती है। दान लेनेवाले बिना मेहनतके मिले हुअे दानकी क नहीं कर सकते।

२. सारे जमीन-मालिक मानो पापी हैं और अुन्हें प्रायश्चित्त करना है, यह विचारधारा भी ठीक नहीं है।

३. हमारे देशमें खेतीका अुत्पादन दूसरे देशोंकी तुलनामें बहुत ही कम है। अिसलिअे फिलहाल तो हमारा ध्येय खेतीमें सुधार करके अुत्पादन बढ़ानेका होना चाहिये। यह चीज भूदान-यज्ञकी निगाहसे बाहर रह जानेकी ही संभावना नहीं है, बल्कि अुससे विपरीत परिणाम आनेकी भी संभावना है। क्योंकि —

४. अिसके कारण जमीनके छोटे-छोटे टुकड़ोंमें वृद्धि होगी और खेतीकी जमीनका अेकीकरण (कन्सॉलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स) करनेके काममें रुकावट पैदा होगी;

५. जिन काश्तकारोंको जमीन दी जायगी, वे बहुत वर्षोंसे वैसी परिस्थितिमें रहनेके कारण अधिकतर अज्ञान और गैर-जिम्मेदार होंगे। अुनमें अच्छे ढंगसे खेती करनेका ज्ञान नहीं होगा, अितना ही नहीं, बल्कि अुनके पास अच्छी खेती करनेके लिअे हल, बैल, औजार, पूंजी, आदि जरूरी साधन भी नहीं होंगे;

६. अिस प्रवृत्तिके परिणामस्वरूप छोटे-छोटे खेतोंके व्यक्तिगत मालिकोंकी संख्यामें वृद्धि होगी। अधिक अुत्पादन हो अैसी अच्छी खेती करनेके लिअे सहकारी, संयुक्त या सामुदायिक खेती होनी चाहिये। अुसमें अिससे रुकावटें पैदा होंगी;

७. भूदान-प्रवृत्तिका रूप अहिंसक और अिसलिअे अैच्छिक होनेके कारण वह अुसी प्रदेशमें सफल होगी, जिस प्रदेशमें जमीन घटिया और बहुत ज्यादा मात्रामें होगी। जहां जमीनका प्रश्न अधिक तीव्र नहीं होता, वहां अिस प्रवृत्तिका स्वागत किया जाता है। लेकिन जहां जमीनकी बड़ी तंगी है और जमीन-मालिकों तथा काश्तकारोंके बीच जमीनके लिअे बड़ी खींचातानी चल रही है, वहां अिस प्रवृत्तिका अधिक स्वागत नहीं होता;

८. आज भिन्न-भिन्न राज्योंके सामने जमीनका प्रश्न हल करनेमें जो कठिनाअी आती है, वह जमीनके अभावकी नहीं है; सच्ची कठिनाअी बेजमीन अज्ञान काश्तकारोंको तालीम देने और अुनके लिअे हल, बैल आदि साधन मुहैया करनेकी है। अिसका सबूत यह है कि हमारे गांवोंके किसान दूर-दूरके प्रदेशोंमें जाकर मजदूरी करना पसन्द करते हैं, लेकिन सरकार अुन्हें खेती करनेके लिअे जमीन दे, तो अुसमें खेती करना वे पसन्द नहीं करते;

९. भूदानकी योजनामें अिसका निश्चय नहीं किया गया है कि अेक परिवारको स्वावलम्बी होनेके लिअे कितनी जमीन चाहिये। साथ ही अिस बातका भी कोअी विचार नहीं किया गया है कि अैसे परिवारका विस्तार और जरूरतें बढ़ने पर अुसे क्या करना चाहिये। यह तो वैसी ही बात हुअी जैसे कोअी नीमहकीम किसी भारी बीमारीका अिलाज करे और अुलटे रोगीकी हालतको ज्यादा बिगाड़ दे;

१०. भूदान-प्रवृत्तिमें अिसका भी कोअी अिलाज नहीं सुझाया गया है कि 'जोते अुसकी जमीन' और 'खेती सुधरनी चाहिये और जमीनका अुत्पादन बढ़ना चाहिये' अिन दो सूत्रोंका बदलती हुअी परिस्थितिमें किस प्रकार मेल बैठाया जाय;

११. भूदानकी प्रवृत्ति वर्तमान अर्थ-व्यवस्थाके लिअे अनुकूल नहीं है। बेजमीनोंको जो जमीन दी जायगी, वह आर्थिक दृष्टिसे न पुसानेवाली या अपर्याप्त (अन-अिकॉनामिक) होगी। अिसलिअे ये काश्तकार फिर कर्जदार हो जायंगे। कर्जका ब्याज देनेके लिअे तथा जमीनका लगान चुकानेके लिअे अुन्हें नकद पैसोंकी जरूरत होगी और अुसके लिअे अुन्हें व्यापारिक फसल पैदा करनी पड़ेगी। अनाज पैदा किया होगा, तो वह भी अुन्हें बेच देना पड़ेगा। अिसलिअे जमीनवाले बन जानेसे तो वे और भी अधिक आर्थिक कठिनाअीमें पड़कर परेशान होंगे। अिसकी अपेक्षा तो आज रोजाना मजदूरी पर काम करनेवाले मजदूरोंके रूपमें अुनकी स्थिति ज्यादा अच्छी है।

ये सब आपत्तियां अवश्य ही सोचने जैसी हैं। लेकिन भूदान-यज्ञके पीछे जो विचारधारा काम कर रही है, अुसे ठीक-ठीक समझा जाय तो ये आपत्तियां टिक नहीं सकेंगी। हम विचार-धाराको स्पष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे।

बेजमीन किसानोंको दया-दान करनेका भाव भूदान-प्रवृत्तिमें हरगिज नहीं है। जमीन-मालिकोंसे यह साफ-साफ कह दिया जाता है कि बेजमीनोंको अपनी जमीनमें से अुनका अपना भाग देना आपका फर्ज है; दीर्घदृष्टिसे देखें तो अुसीमें आपका स्वार्थ भी है। साथ ही यह भी स्पष्ट रूपमें कह दिया जाता है कि अिस प्रवृत्तिके पीछे अैसी भावना बिलकुल नहीं है कि अमुक वर्ग पापी है और अमुक वर्ग पुण्यशाली है। कअी जमीन-मालिक व्यक्तिगत रूपमें बड़े सज्जन होते हैं, अुसी प्रकार कअी बेजमीन लोग व्यक्तिगत रूपमें खराब भी हो सकते हैं। आज जो अन्याय दिखाअी देता है, अुसका कारण आजकी अर्थ-व्यवस्था है। यदि हम सब समाजमें शांतिसे रहना चाहते हों, तो अिस अन्यायको दूर करके न्याय्य व्यवस्था खड़ी करनी चाहिये। अैसा करना भूदान-प्रवृत्तिका मुख्य हेतु है।

भूदान-प्रवृत्ति खेतीका अुत्पादन बढ़ानेकी आवश्यकता स्वीकार करती है। लेकिन निजी मालिकीकी, सहकारी या बड़े पैमाने पर सामुदायिक खेतीसे अुत्पादन बढ़ेगा ही, अिस बातको माननेका कोअी आधार नहीं है। आजकल तो पश्चिमके भी कितने ही खेती-विशेषज्ञ अिस निर्णय पर आने लगे हैं कि छोटे पैमाने पर खेती करनेमें जमीन और फसलकी जितनी विशेष संभाल रखी जा सकती है, अुतनी बड़े पैमाने पर खेती करनेमें नहीं रखी जा सकती। यह सच है कि हमारे देशमें आजकल सहकारी खेतीकी हवा चल रही है। लेकिन अुसमें भी बड़े विवेकसे काम लेनेकी जरूरत है। यह गहराअीसे सोचने जैसा प्रश्न है कि सहकारी (कोऑपरेटिव) या सामुदायिक (कलेक्टिव) खेतीमें शामिल हुअे सारे काश्तकार मजदूरोंके रूपमें अुसके व्यवस्थापक-मंडल द्वारा निश्चित किये हुअे कामको करनेवाले बन जायें, तो वह प्रथा हमारे देशकी खेतीको सुधारनेमें कहां तक कामयाब होगी। पहला सवाल तो यह है कि काश्तकार अपनी निजी मालिकीकी खेतीमें जितनी लगन और जिम्मेदारीसे काम करता है, अुतनी लगन और जिम्मेदारी वह सहकारी या सामुदायिक खेतीमें रख सकेगा या नहीं। अैसा तभी हो सकता है जब काश्तकारका मन नैतिक दृष्टिसे बड़ा शिक्षित हो। भविष्यमें अैसी स्थिति शायद आ सकती है। लेकिन आज अैसा नहीं लगता कि हम अेकदम अिस स्थिति

www.vinoba.in

पर पहुंच सकते हैं। गुजरातका अुदाहरण लें तो यहां जो थोड़ी-बहुत सहकारी खेती-समितियां बनी हैं, वे अब तक अिस तरहकी सहकारी या सामुदायिक खेतीमें सफल नहीं हुअीं। अिसका यह अर्थ नहीं कि सहकारी खेती-समिति कायम ही न की जाय। लेकिन पहले-पहल अिस खेती-समितिमें सहकारका स्वरूप बहुत मर्यादित रखना होगा। मिसालके तौर पर, जोतनेके लिअे बैलोंकी व्यवस्था करनेमें, अच्छे बीज प्राप्त करनेमें, फसलकी रक्षा करनेमें, मालकी खरीद-बिक्रीके सम्बन्धमें और अैसे दूसरे कुछ मामलोंमें आसानीसे सहकार हो सकता है। लेकिन खेतीकी भिन्न-भिन्न क्रियाओंमें हरअेक परिवारके आदमी ही मेहनत करें, तो वह अधिक लाभदायी हो सकता है।

बेजमीन काश्तकारोंको जमीनवाले बनानेसे छोटे पैमाने पर की जानेवाली खेतीकी मात्रा अवश्य ही बढ़ेगी। लेकिन कुछ काम, जैसा कि अूपर बताया गया है, सहकारी ढंग पर किये जायेंगे, अिसलिअे छोटे पैमानेकी खेतीसे होनेवाली हानियोंसे काश्तकार जरूर बच जायेंगे।

आजकल आर्थिक दृष्टिसे पर्याप्त (अिकॉनामिक) और आर्थिक दृष्टिसे अपर्याप्त (अन-अिकॉनामिक) खेतीके बारेमें बड़ी चर्चा होती है। अेक बैल-जोड़ीसे हो सके और पांच-छः मनुष्योंके परिवारका अच्छी तरह भरण-पोषण हो सके अैसी खेतीको आर्थिक दृष्टिसे पर्याप्त या लाभदायक खेती कहा जाता है। लेकिन हमारे देशमें खेतीके लायक जितनी जमीन है, अुसका वितरण जितने परिवारोंका निर्वाह आज खेती पर होता है अुन सबमें किया जाय, तो हरअेक परिवारको आर्थिक दृष्टिसे पर्याप्त खेती करने जितनी जमीन दी ही नहीं जा सकती। अिसलिअे खेती पर गुजर करनेवाले परिवारोंकी संख्या घटाकर बाकीके परिवारोंको दूसरे अुद्योग-धन्धोंमें लगानेका विचार किया जाता है। लेकिन खेतीमें सुधार करनेकी दृष्टिसे और किसानोंके सर्वांगीण विकासकी दृष्टिसे अैसा करना ठीक नहीं है। आज जो लोग खेतीके काममें लगे हुअे हैं, वे स्थायी रूपसे दूसरे अुद्योग-धन्धोंमें लग जायं — और अिसके लिअे ज्यादातर तो गांव छोड़कर अुन्हें शहरोंमें ही जाना पड़ेगा — तो खेतीके अेक खास मौसममें मजदूरोंकी भारी तंगी पैदा होगी। अिसे दूर करनेके लिअे खेतीमें मशीनोंका अुपयोग करनेकी बात सुझाअी जाती है। अिसका मतलब है कि खेतीमें भी पूंजीवादी पद्धति दाखिल की जाय और अेक कठिनाअी दूर करनेके लिअे दूसरी ज्यादा बड़ी बुराअीको निमंत्रण दिया जाय। ये सारे काल्पनिक अिलाज पूरी तरह तो अमलमें लाये ही नहीं जा सकते। अुनका अधूरा अमल होने पर भी बेकारी निश्चित रूपसे बढ़ेगी।

दूसरे, आदमी केवल खेती ही करे, तो अुसमें अुसे अपनी अंगुलियोंकी कुशलता बढ़ाने और बुद्धिकी बारीकी दिखानेका मौका नहीं मिलता। लेकिन खेतीके साथ कुछ हाथ-अुद्योग भी करनेसे यह वस्तु सिद्ध की जा सकती है। अिसलिअे ज्यादा अच्छा अुपाय यह है कि खेती और अुद्योग-धन्धोंको अेक-दूसरेसे अलग करनेके बजाय हर परिवार खेती भी करे और फालतू वक्तमें कुछ अुद्योग-धन्धे भी करे। बेशक, अैसे अुद्योग हाथ-अुद्योग और ग्रामोद्योग ही होंगे।

आज खेतीके साथ पशुपालन तो होता ही है। बड़ी जरूरत अिस बातकी है कि भैंसोंके बदले किसान गायें पालने लगें। क्योंकि अैसा करनेसे जरूरी दूध-घीके अलावा खेतीके लिअे आवश्यक बैल भी घरके ही मिल सकेंगे। दूसरे ग्रामोद्योगोंमें खादीका अुद्योग, तेलघानीका अुद्योग, गुड़का अुद्योग मुख्य अुद्योग माने जा सकते हैं। अिसलिअे केवल खेतीका धन्धा करके अपनी सारी जरूरतें पूरी करने जितनी आमदनी पानेका खयाल छोड़कर हमें खेतीके साथ गोपालन, खादी वगैरा ग्रामोद्योग चलाकर परिवारका भलीभांति पोषण करनेका विचार बढ़ाना चाहिये। खेतीके साथ दूसरे ग्रामोद्योगोंको जोड़कर किसान-परिवारके अुचित निर्वाहकी आर्थिक व्यवस्था हमें करनी चाहिये। अिस तरह विचार करनेसे और खेतीकी कुछ क्रियाअें सहकारी पद्धतिसे पूरी करनेसे खेतोंके छोटे-छोटे टुकड़े न होने देनेका रास्ता हमें निश्चित ही मिल जाता है। अिसके अलावा, छोटे पैमानेकी खेतीके सारे लाभ भी हमें मिल सकते हैं।

दूसरा सवाल आजके बेजमीन किसानों यानी खेतोंमें मजदूरी करनेवालोंके अज्ञान और गैरजिम्मेदारीका है। आज खेतीके सारे काम ये मजदूर ही करते हैं। ये काम वे अच्छी तरह करना भी जानते हैं। लेकिन किस वक्त क्या किया जाय, अिसका ज्ञान अुन्हें नहीं होता। अिसके सिवा, अुन्हें अपनी जिम्मेदारीका भी भान नहीं होता। अैसे लोगोंकी कुल आबादी ८ से ९ करोड़की है। अिसका मतलब हुआ लगभग डेढ़-पौने दो करोड़ परिवार। हमारी आबादीका अितना बड़ा भाग अैसा गैरजिम्मेदार, साधनहीन और कंगाल हो, यह सारे देशके लिअे खतरनाक बात है। अिसमें जो भारी अन्याय है, वह जल्दीसे जल्दी दूर न किया गया, तो सारे समाजकी सुरक्षा खतरेमें पड़ जायगी। अिसलिअे, जैसी कि कल्पना की जाती है, अुत्पादन घटनेका खतरा अुठाकर भी अिन लोगोंको जमीनके मालिक बनाकर समाजके जिम्मेदार अंग बनानेमें न्याय है; अिसीसे देशमें शांति और सलामती भी कायम रहेगी। लेकिन अिन लोगोंको जमीन देनेसे अुत्पादन घटेगा, अैसा डर तो अुन्हीं लोगोंको है, जो 'जैसे थे — स्टेटस को' की हालत बनी रहने देना चाहते हैं और जिन्हें अिस तरहके परिवर्तनसे कुछ त्याग करना पड़ेगा। जिन परिवारोंको जमीन दी जायगी, अुन्हें शिक्षा देनेकी, साधन देनेकी तथा हाथ-अुद्योग व ग्रामोद्योग सिखानेकी सारी जिम्मेदारी समाजको अुठानी ही होगी। और यह जिम्मेदारी अगर हम पूरी करेंगे, तो खेतीका अुत्पादन घटनेके बजाय जरूर बढ़ेगा। अिस वक्त अनेक रचनात्मक कार्यकर्ता अपने कर्तव्यके विषयमें दुविधामें पड़े मालूम होते हैं। लेकिन अुन्हें अिसमें पूरा-पूरा काम मिल सकता है। अिसलिअे विनोबाजी रचनात्मक कार्यकर्ताओंसे अपील कर रहे हैं कि आप अपने सारे काम छोड़कर भूदान-यज्ञके काममें लग जाअिये। भूदान-यज्ञको सफल बनानेमें ही गांधीजीके रचनात्मक कार्यक्रमको जीवित रखनेकी आशा निहित है। खेतीके प्रश्नके साथ रचनात्मक कार्यक्रमको जोड़कर ही हम अहिंसक समाजका निर्माण कर सकेंगे और अपना ध्येय सिद्ध कर सकेंगे।

अब आखिरी ११ वीं आपत्ति पर विचार करें। अूपर जो कुछ कहा गया है, अुसमें अिसका बहुत कुछ जवाब तो आ ही जाता है। फिर भी कुछ पुनरुक्तिका दोष अपने सिर लेकर भी हम यहां अुसका स्पष्टीकरण करेंगे। भूदान-प्रवृत्ति केवल जमीनका बंटवारा करनेकी प्रवृत्ति नहीं है; वह सारी अर्थ-रचनाको बदलनेवाली अेक महाक्रांतिकारी प्रवृत्ति है। भूदान-प्रवृत्तिका विचार अैसी क्रांतिकारी दृष्टिसे न किया जाय और आजकी अर्थ-व्यवस्था हमेशा बनी ही रहेगी, अैसा मानकर अगर भूदानके लाभ-हानिकी चर्चा करने बैठें, तो कहना चाहिये कि हम भूदानका सच्चा अर्थ समझे ही नहीं हैं। विनोबाने भूदानकी प्रवृत्तिको यज्ञ कहा है। अुसके पीछे गहरा रहस्य है। अुसमें पूर्ण अहिंसक ढंगसे सामाजिक और आर्थिक क्रांति करनेकी भावना है। यह जरूरी है कि भूदानके कार्यकर्ता अिस चीजको ठीक-ठीक समझ लें। जिन बेजमीनोंको जमीन दी जाय, अुनके जरिये अिस तरहकी क्रांति सिद्ध करनी है। अुसीमें कार्यकर्ताओंकी सच्ची परीक्षा है।

जहां जमीनकी कीमत कम है और जहां जमीन घटिया किस्मकी है वहीं यह प्रवृत्ति चलती है, अैसा कहनेमें तो टीकाकारोंका

www.vinoba.in

अज्ञान ही प्रकट होता है। अुत्तर प्रदेश और बिहारके कितने ही जिलोंमें अेक बीघा जमीनकी कीमत अेक हजारसे लेकर दो-ढाअी हजार तक होती है। वहां भी बड़े जमींदार और छोटे किसान अपनी जमीनमें से अपने बेजमीन भाअियोंके लिअे जमीन देनेको तैयार हो जाते हैं। यह बताता है कि अुन्हें क्रांतिकी हवा लग गअी है। वे समझ गये हैं कि जमीन पर मेहनत-मशक्कत किये बिना जमीनके मालिक बने रहना भारी अन्याय है, और किसानोंको अब लम्बे समय तक बेजमीन रखनेमें बड़ा खतरा है।

अेक बात हमें ध्यानमें रखनी चाहिये। वह यह कि अैसी स्थिति अिस दुनियामें कभी पैदा नहीं होगी, जब यहां किसी भी प्रकारकी बुराअी नहीं रहेगी। सृष्टिका यह क्रम है कि अेक बुराअीको मेटाने जाते हैं, तो अुसमें से या दूसरी किसी तरहसे नअी-नअी बुराअियां पैदा होती ही रहती हैं। अिस दुनियामें स्थायी हल जैसी कोअी चीज है ही नहीं। हम रोज स्नान करते हैं, फिर भी रोज हमारा शरीर मैला होता ही है। अुसी तरह समाज-शरीरको भी हमेशा साफ-स्वच्छ रखना होता है। जमीनके आजके प्रश्नको हम अमुक ढंगसे हल कर सकते हैं, लेकिन भविष्यमें अुससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे कोअी प्रश्न अुठने ही वाले हैं। अुस समय अुन्हें अुस समयका समाज हल कर लेगा। अिस दुनियामें कोअी भी चीज स्थिर और स्थायी है ही नहीं। यदि अैसा होता तो यह दुनिया कल्पनाके स्वर्ग जैसी बन जाती — जिसमें देवताओंको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं होती, न अुनकी कोअी जिम्मेदारी होती, केवल अमृत पीते और आनन्द मनाते रहना होता है। लेकिन समझदार आदमी अैसी स्थितिको कभी अच्छी और वांछनीय नहीं मानता। अुसमें किसी भी तरहका पुरुषार्थ, पराक्रम, साहस है ही नहीं। हमारे सामने नित-नये खड़े होनेवाले प्रश्नोंका हल निकालनेके लिअे पुरुषार्थ करनेमें ही मनुष्यका मनुष्यत्व है।

गहरे चिन्तन और तपश्चर्याके बाद विनोबाजीने आजके महारोगकी सच्ची औषधि ढूंढ़ निकाली है। अूपरके विवेचनसे मालूम होगा कि यह कोअी नीमहकीमका अिलाज नहीं है।

(गुजरातीसे)

नरहरि परीख

पहले किसे प्रधानता दी जाय?

जब हमारा राष्ट्र अपनी पुनर्निर्माणकी योजना बना रहा है, तब यह कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि पहले करने लायक कामोंको सही ढंगसे और विवेकपूर्वक पहला स्थान देनेका निर्णय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन जाता है। हम कह सकते हैं कि वह सच्ची योजनाका अेक सार है। अिस सम्बन्धमें जो लोग हमारे देशमें यह निर्णय करते हैं, वे नीचेकी खबरको दिलचस्पीसे पढ़ेंगे, याद रखेंगे और अुससे लाभ अुठायेंगे:

अरुप्पुकोट्टाअी, ९ जून

"मुख्यमंत्री श्री च० राजगोपालाचार्यने राज्यके ५० लाख हाथ-करघा बुनकरोंको यह आश्वासन दिया कि सरकार अुन्हें राहत देनेकी भरसक कोशिश करेगी। अुन्होंने आगे कहा कि अगर अेक मिल या १२ हाथ-करघोंमें से किसीको बन्द करनेके सवाल पर वोट लिये गये, तो वे मिलको बन्द करनेके पक्षमें ही अपना वोट देंगे। अुन्हें यह भी विश्वास था कि प्रधानमंत्री अुनकी अिस रायका समर्थन करेंगे।"

('हिन्दू', १० जून, १९५३)

(अंग्रेजीसे)

म० प्र०

हमारी खेती और अुद्योगोंकी मिली-जुली अर्थरचनाकी नींव

मेरे विचार और मेरी नीति पुरानी और सीधी-सादी है। मेरा यह दृढ़ मत है कि अिस देशको खेतीकी नींव पर ही खड़ा होना चाहिये। खेती और अन्नका अुत्पादन हमारा मुख्य काम होना चाहिये। अुसके बाद हमारा ध्यान हमारे सबसे ज्यादा पिछड़े हुअे अुद्योग घरेलू कताअी-बुनाअी पर होना चाहिये। हमें कुछ अैसी योजना करनी चाहिये कि किसानोंके मनमें आशाका संचार हो और अुन्हें यह विश्वास हो कि अुनकी मेहनतका फल अुन्हें मिलेगा। अिसी तरह बुनकरोंको भी यह निश्चय होना चाहिये कि अुनके अुद्योगके लिअे अुन्हें बाजार मिलता रहेगा। न तो बुनकरको और न किसानको अैसा लगना चाहिये कि समाजको अुसकी आवश्यकता नहीं है। अगर जमीनकी जमींदारी खतम होना चाहिये, तो कपड़ा-अुद्योगकी जमींदारी भी खतम होना चाहिये और अुसकी जगह वैयक्तिक अुत्पादनको मिलनी चाहिये। अिसलिअे मैंने अपने शासनका आरम्भ दो बातोंसे किया और अुसमें दूसरोंके डर और सन्देहोंका विचार नहीं किया। कोरे सिद्धान्त बघारनेवाले पण्डितोंकी धमकियोंकी मैंने कोअी परवाह नहीं की और अन्नका विनियंत्रण कर दिया। अुससे किसानोंको लगा कि वे आजाद हैं। अेक अैसे क्षेत्रमें, जिसमें आनन्द कम है और बहुत मेहनत तथा धीरजकी जरूरत होती है, जिन नियमोंके अनुसार मनुष्य प्रयत्न करनेमें प्रवृत्त होता है और जो प्रेरणाअें अुसके अिस प्रयत्नका पोषण करती हैं, अुनकी हम अुपेक्षा नहीं कर सकते। तो मुझे लगा कि विनियंत्रण ही अधिक अन्न अुपजानेका सर्वोत्तम कार्यक्रम है।

बुनकरोंकी कठिनाअियां

अिसी तरह बुनकरोंकी मददके लिअे मैंने मिलकी धोतियों और साड़ियोंका अुत्पादन बंद करनेकी आवाज अुठाअी, ताकि देशमें हाथ-करघेके कपड़ेको सुनिश्चित बाजार मिल सके। मैं अभी अुन सब दलीलोंकी चर्चा नहीं करना चाहता, जिनके कारण मैं लगातार मिलकी धोतियों और साड़ियोंके अुत्पादन पर प्रतिबंध लगानेकी मांग करता रहा। मेरा मत है कि अिस मांगका विरोध देशके लिअे अहितकर है और बुद्धिमत्ताका अभाव प्रगट करता है। मेरी मांग कुछ अिने-गिने लोगोंके लिअे या किसी अैसे अुद्योगकी रक्षाके लिअे नहीं है जो मरनेके करीब है; वह लाखों अीमानदार और मेहनती लोगोंके लिअे तथा अैसे अुद्योगकी रक्षाके लिअे है, जिस पर दो करोड़ लोगोंका जीवन निर्भर है। अिसके सिवा, हाथ-करघे पर काम करनेवाले बुनकरोंका बनाया हुआ कपड़ा मिलके कपड़ेकी तुलनामें किसी भी तरह हलका नहीं होता, बल्कि अुससे बढ़िया होता है — अुतना बढ़िया जितना कि अीमानदारीके दिखावेकी तुलनामें सत्य। मैं कहता हूं कि अगर कोअी आदमी हाथ-करघेकी धोती और साड़ीके सुलभ होते हुअे मिलकी धोती और साड़ी खरीदता है, तो वह पाप करता है। यह कोअी राजनीति या अर्थनीतिकी बात नहीं है, यह मानवीय संवेदनाका, अपने देशके दुःखी और गरीब पुरुषों, स्त्रियों और बालकोंके प्रति ममताका तकाजा है। हमारे बुनकर अपने काममें होशियार हैं, मेहनतसे काम करते हैं और हमारे पहननेके लिअे अुत्तम कपड़ा तैयार करते हैं। भारतवर्ष किसानों और बुनकरोंका देश है। अगर हम अुनकी परवाह नहीं करते, तो हमारे देशप्रेमका क्या अर्थ हो सकता है? बुनकरको खाली हाथ लौटाकर हम मिलका कपड़ा खरीदनेकी बात कभी न सोचें।

('हिन्दू', २४ मअी, १९५३ में प्रकाशित श्री राजाजीके भाषणकी रिपोर्टमें से।)

(अंग्रेजीसे)

www.vinoba.in

मजदूरोंके लिअे सुख-सुविधायें

'टाअिम्स ऑफ अिण्डिया' में 'अुद्योगपति' के नामसे लिखनेवाले व्यक्तिके कअी लेख छपे थे। अुनमें से लिये गये नीचेके अुद्धरणकी ओर अेक मित्रने मेरा ध्यान खींचा है:

"सरकारका फेक्टरीज़ अेक्ट (कारखाना-कानून) कहता है कि मिलोंको अपने हर मजदूरके लिअे रोजाना कम-से-कम अेक गैलन पीनेके पानीकी और छः गैलन नहाने-धोनेके पानीकी व्यवस्था करनी चाहिये। यह अेक निर्दोष मांग है, बशर्ते पानीकी तंगी न हो। लेकिन बम्बअी शहरमें, जहां गर्मियोंमें पानी मौज-शौककी चीज बन जाता है, अिस कानून पर सख्तीसे अमल करना असंभव है।

"बेशक, यह जरूरी है कि जिन कारखानोंमें केन्टीन, भोजन-गृह और विश्राम-घर वगैरा नहीं हैं, वहां वे बनने चाहियें। लेकिन यह याद रखना चाहिये कि बम्बअी शहरकी ज्यादातर मिलोंमें अैसी कोअी अिमारत बनानेकी बहुत ही कम या बिलकुल जगह नहीं है। मकान बनानेके सामानकी भी भयंकर तंगी है।... अिसके लिअे १६० लाख रुपयेका खर्च करना होगा। मालूम होता है बम्बअी सरकार अिस कामकी विशालताको समझ गअी है, अतः फेक्टरीज़ अेक्टकी धाराओंके अमलमें अुसने छूट देनेका काफी ध्यान रखा है।" वे मित्र आगे कहते हैं:

"चूंकि मिलें हर आदमीके लिअे अेक गैलन पीनेका पानी और छः गैलन नहाने-धोनेका पानी नहीं दे सकतीं, अुसकी कोशिश करना बेकार है — यह पूंजीवादियोंकी दलील है। अुनके दिमागमें यह बात कभी आती ही नहीं कि अिसके लिअे ट्यूबवेल (पाताल-कुअें) खुदवाकर पानी मुहैया करनेकी कोशिश भी की जा सकती है।

"अिसके अलावा, चूंकि केन्टीनकी व्यवस्था करनेमें कुल ६२ लाख रुपये और आसरा, विश्राम-गृह, भोजन-घर वगैरा बनवानेमें अेक करोड़ रुपये खर्च करने पड़ेंगे, अिसलिअे ये सुविधायें देनेकी कोशिश ही नहीं की जानी चाहिये। मजदूरों और दूसरे नौकरोंका अिसके बिना काम चल सकता है! अिन 'सज्जनों' को चाहिये कि वे मजदूरोंको आज जिन हालतोंमें काम करना पड़ता है, अुन्हीं हालतोंमें अुनके साथ काम करें; तब वे अिस तरहकी बातें नहीं करेंगे या अैसा नहीं लिखेंगे।

"अगर 'अुद्योग' और 'राष्ट्र' यह खर्च बरदाश्त नहीं कर सकते, तो अिससे साबित होता है कि ये सज्जन मजदूरोंको जीवनकी अत्यन्त आवश्यक सुविधायें भी नहीं दे सकते। अगर पूंजीवादी व्यवस्थामें ये बातें नहीं की जा सकतीं, तो मजदूर अिन सुविधाओंके बिना रहें अिसके बजाय पूंजीवादको खतम हो जाना चाहिये। जो पद्धति काम करनेवालोंको जरूरी सुविधायें नहीं दे सकती, अुसका अन्त कर दिया जाना चाहिये।"

यह तो साफ है कि पूंजीवादी तर्क दोषपूर्ण और भ्रममें डालनेवाला है। आजकी दुनिया बड़ी हानि अुठाकर और चिन्ताओंमें से गुजरनेके बाद अिसे महसूस कर रही है। मैं और ज्यादा टीकाके रूपमें यह जोड़ना चाहता हूं कि मजदूरोंको जीवनकी ये अत्यन्त आवश्यक सुविधायें देनेके लिअे जरूरी पैसेका प्रबन्ध अगर अुद्योगोंको ही करना चाहिये, या 'अुद्योगपति' के कथनानुसार यदि "पैसे और सामग्रीका यह खर्च अुचित हो" — अिसका अर्थ है कि अगर अुद्योगों पर यह खर्च डालना जरूरी और अुचित हो — तो जरूरी तौर पर वह पैसा प्राप्त किया ही जाना चाहिये।

पर यह चीज पूंजीपति करना नहीं चाहते; आजके सामाजिक-आर्थिक तंत्रने भी अुन्हें अिसकी पूरी छूट दे दी है।

अिसके अलावा, यह साफ है कि अुद्योगोंके लिअे अुचित माना गया यह खर्च अिसलिअे नहीं किया जाता कि वह पूंजीवादी ढंगसे संगठित अुद्योगों पर दो तरहसे असर डालता है: १. वह अुद्योगोंके लिअे मालकी कीमत बढ़ाना जरूरी बनाता है; २. अुसके लिअे लाभ और मुनाफेमें काटछांट करना जरूरी होता है। लेकिन अुद्योग अिनमें से अेक भी बात नहीं करना चाहते। यह स्पष्ट है कि अगर अुचित खर्च करना ही हो, तो कीमतें थोड़ी बढ़ानी ही पड़ेंगी। लेकिन अैसा नहीं किया जाता, क्योंकि अुसका असर बिक्री पर पड़ेगा। अिसका अर्थ यह है कि हाथ-बने कपड़ेके विरुद्ध मशीनसे बने हुअे कपड़ेके अूपरसे दिखाअी देनेवाले जिस सस्तेपनकी बहुत बातें की जाती हैं और जिसके बारेमें अुद्योगपति शेखी बघारते हैं, वह काल्पनिक और केवल नामका है और दरअसल गरीब और असंगठित मजदूरोंका पेट काटकर पैदा किया जाता है। और राज्य अैसे अुद्योगोंको आश्रय देकर जाने-अनजाने अुस अर्थ-व्यवस्थाको जारी रखनेमें मदद करता है।

अुद्योगपतिको अैसे तंत्रमें और अैसी पद्धतिसे काम करनेका यह अधिकार किस तरह मिलता है? अिसका कारण है खानगी पूंजी पर स्वामित्वका अधिकार। खानगी सम्पत्ति और अुसके अुपयोगके हमारे आजके विचार अिसकी छूट देते हैं। जमींदार या जमीनके मालिककी तरह अुद्योगपति पूंजीका मालिक बनता है; और शेयरकी पूंजीकी तरकीब और लिमिटेड कंपनी खोलनेकी कानूनी चालके जरिये औद्योगिक रचनाने निष्क्रिय जमींदारी-प्रथा (अेब्सेन्टी लेण्डलार्डिज्म) की तरह निष्क्रिय पूंजीपतित्वकी प्रथाकी सुविधा दे दी है और सच्चे कामगारको अपने साथी काश्तकार या खेती-मजदूरकी तरह केवल मजदूरी लेकर मशीनकी देखभाल करनेवालेके रूपमें बदल दिया है। राष्ट्रके सामने सचमुच यह अेक बड़ी समस्या है, जिसे हमें अपनी अर्थ-रचनाके तथाकथित औद्योगिक क्षेत्रमें हल करना है। पूंजीपति, हिस्सेदार (शेयर-होल्डर), अुद्योगपति और दूसरे अैसे सब लोगोंको, जो मौजूदा औद्योगिक व्यवस्थाका निर्माण और संचालन करते हैं, साथ मिलकर सोचना चाहिये और अिस समस्याके हलके रास्ते और साधन खोजनेमें सहयोग देना चाहिये। राजनैतिक दलों और मजदूर-संघोंके कार्यकर्ताओंको सोच-विचारकर अैसा कोअी रास्ता खोजना चाहिये, जो अुद्योगोंमें मजदूरोंको फिरसे पूंजीपतियोंके साझेदार बना दे, क्योंकि आज तो पूंजीपति ही कानून और अमल दोनोंमें अुद्योगोंके अेकमात्र स्वामी बने हुअे हैं। यह अनुचित है। मजदूरों और पूंजीपतियोंको अुद्योगमें संयुक्त साझेदार होना चाहिये और निष्क्रिय पूंजीपतित्व या साझेदारी (शेयर-होल्डिंग) की बुराअी मिटनी चाहिये। जैसा कि मैंने ता० २०-६-'५३ के 'हरिजन' में छपे अपने 'शंकाका कोअी कारण नहीं है' लेख में कहा है,* यह तीसरा काम है जिसके लिअे सीधी कार्रवाअीका कोअी साधन जरूरी है। अिस प्रश्नको आज यहीं छोड़कर आगे अिस पर विस्तारसे विचार करूंगा।

१८-६-'५३ **मगनभाअी देसाअी**
(अंग्रेजीसे)

* "अुसके बाद मुट्ठीभर लोगोंके हाथमें केन्द्रित पूंजीका और अुस पूंजीके जरिये वैयक्तिक मुनाफेका सवाल बाकी रह जाता है। अिस अनिष्ट परिस्थितिके सुधारके लिअे भी हमें कोअी शांतिपूर्ण हल खोजना है।"

www.vinoba.in

गांधीजीका मजदूर-आन्दोलन

मेरे लेख 'गांधीजीकी मजदूर-नीति' की टीका करते हुअे श्री आचार्यने दो मुद्दे खड़े किये हैं: "जब तक मजदूर-संघ पूंजीवादको खतम करके सारे अुद्योग-धन्धे अपने हाथमें लेने और अुन्हें समाजके भलेके लिअे चलानेका ध्येय नहीं बनाते, तब तक अुन्हें केवल पूंजीवादी व्यवस्थाके सहायक अंगोंका ही काम करना पड़ेगा और अिस तरह पूंजीपतियोंकी लूटमें भागीदार बनना होगा।"

श्री आचार्यका दूसरा मुद्दा यह है: राज्य अुत्पादन और वितरणका काम अपने हाथमें ले ले अितना ही काफी नहीं है; जहां राज्य मालिक बन जाता है, वहां मजदूर-संघ राज्यको लूटमें मदद पहुंचानेके लिअे ही संगठित किये जाते हैं।

अिस सिलसिलेमें वे रूसका अुदाहरण देते हैं, जहां हड़तालको 'राजद्रोह' माना जाता है। अिसलिअे श्री आचार्य अिस नतीजे पर पहुंचते हैं कि जब तक मालिक और मजदूरकी पद्धति जारी है, तब तक यह बुराअी मिट नहीं सकती।

श्री आचार्यकी अिन मान्यताओंका जवाब देनेके लिअे हमें मालिक, मजदूर और समाजके बीचके सम्बन्धके बारेमें गांधीजीके विचारोंको ठीक ढंगसे समझना होगा। गांधीजीकी रायमें मजदूर और पूंजीपति दोनों अुत्पादनके क्षेत्रमें भागीदार हैं — अेक पूंजी देता है, दूसरा मेहनत देता है। मेहनत असलमें मजदूरकी पूंजी है; दोनोंके संयोगके बिना कोअी अुत्पादन हो ही नहीं सकता।

लेकिन, जब तक मजदूरको अुत्पादनमें अपनी अिस सहायताका भान नहीं होता, तब तक अुसके साथ न्यायका व्यवहार नहीं किया जाता और वह मालिकके शोषणका शिकार बना रहता है। दूसरी तरफ, मजदूरको जब अपनी सहायताका भान हो जाता है, तब वह शोषणका शिकार बननेसे अिनकार कर देता है।

गांधीजी यह भी चाहते थे कि मालिक मजदूरोंके साथ सांठ-गांठ करके समाजकी लूटमें कभी भाग नहीं लें। अिसलिअे गांधीजी चाहते थे कि मालिक अिस तरह व्यवहार करे, मानो वह अपनी दौलतका ट्रस्टी हो, न कि निरंकुश मालिक।

अैसा लग सकता है कि यह आदर्श तसवीर है, जिस पर अमल करना कठिन है। लेकिन गांधीजी अिसे समझने लायक व्यावहारिक तो थे। अिसलिअे अुन्होंने मजदूर-आन्दोलनको बढ़ावा दिया और अेक तरफ अुन्हें मालिकके सारे अन्यायोंका सामना करनेके लिअे मजबूत बनाया, जबकि दूसरी तरफ मालिक और मजदूर दोनोंको राष्ट्रकी जरूरतोंके अधीन बनानेका प्रयत्न किया। अिसलिअे अुन्होंने मालिक-मजदूरोंके बीचके झगड़ोंका निबटारा करनेके लिअे पंच-फैसले पर जोर दिया, जो आखिर जनमतका ही प्रतिबिम्ब होता है। अिस तरह अुन्होंने मालिक या मजदूरों द्वारा अेक-दूसरे पर अपना निर्णय लादनेकी संभावनाको खतम कर दिया। साथ ही, अुन्होंने पूंजीपतियोंको भी अिस बातके लिअे राजी करनेकी भरसक कोशिश की कि नफेके ध्येयको छोड़कर वे सेवाका ध्येय अपनायें।

जब कोअी मालिक अिस आदर्शको पूरी तरह समझकर अुसका पालन करेगा, तब वह नफाखोरके बजाय ट्रस्टीके तौर पर ही ज्यादा काम करेगा। किती मालिकके बारेमें तो अपनी स्थितिका दुरुपयोग करके मजदूरों या समाजका शोषण करनेकी कल्पना की जा सकती है, लेकिन वही आरोप मजदूरों पर नहीं लगाया जा सकता; अुन्हें आज भी अितनी कम मजदूरी मिलती है कि वे ठीक ढंगसे अपना जीवन नहीं बिता सकते। अितने पर भी गांधीजीने अिस बातकी काफी चिन्ता रखी कि मजदूरोंमें पैसेका लोभ न बढ़े। मजदूरोंके लिअे बनाये गये विधानमें अुन्होंने जान-बूझकर 'मजदूरोंके लिअे अुनके कामके अनुसार मेहनताना प्राप्त करना' शब्द रखे थे। लड़ाअीके वर्षोंमें मजदूरोंको माहवारी बोनस बांटनेवाले मालिकोंको अुन्होंने अनुत्साहित किया था और मजदूरोंको सलाह दी थी कि वे मालिकोंकी अिस वृत्तिके शिकार न हों। अिस सम्बन्धमें गांधीजीने अंतिम शर्त यह रखी थी कि कोअी मजदूर, भले अुसका संघ कितना ही शक्तिशाली हो, कामकी अपनी शर्तें नहीं लाद सकता और कोअी झगड़ा खड़ा होने पर समाजका निर्णय अंतिम माना जायगा। अिसी हेतुसे अुन्होंने झगड़ोंका निबटारा करनेके लिअे पंचके सिद्धान्तका आग्रह रखनेकी हिमायत की थी।

अिस तरह, जैसा कि अूपर बताया गया है, गांधीजीका मजदूर-आन्दोलन शोषक-शोषितके सिद्धान्तसे दूर रहता है और सारे सम्बन्धित लोगोंके कल्याणका ध्येय रखता है। लेकिन यह कोअी आसान काम नहीं है। अिसके लिअे मालिकों, मजदूरों और समाजको सही शिक्षण देनेकी जरूरत है। अिन सिद्धान्तोंके पालनसे अन्तमें सभीका कल्याण होगा।

(अंग्रेजीसे)

खंडुभाअी देसाअी

हमारे नये प्रकाशन

विवेक और साधना

लेखक: **केदारनाथ**

संपादक

किशोरलाल मशरूवाला : रमणीकलाल मोदी

यह पुस्तक वेदान्त, भक्ति, ध्यान, योग-साधना, सिद्धि, साक्षात्कार, तप, वैराग्य आदि विषयोंके जिज्ञासुओं और साधकोंको भी विवेककी कसौटी पर परखा हुआ सच्चा मार्ग बतायेगी और सीधा-सादा, सदाचारी तथा कुटुम्ब, समाज व देशकी सेवाका जीवन बितानेके अिच्छुक संसारियोंको भी रूढ़िवाद और अंधश्रद्धासे अूपर अुठाकर विवेकका रास्ता दिखायेगी। अिसमें लेखकने जगह-जगह अिस बात पर जोर दिया है कि सद्गुणोंकी वृद्धि करके मानवताका विकास करना ही मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च ध्येय और चरम सार्थकता है।

कीमत ४–०–० डाकखर्च ०–१२–०

स्मरण-यात्रा

[बचपनके कुछ संस्मरण]

काका कालेलकर

कीमत ३–८–० डाकखर्च ०–११–०

नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद – ९

विषय-सूची

		पृष्ठ
खादीके बारेमें मानसिक द्वंद्व	श्रीकृष्णदास जाजू	१२९
पूनाकी भाषा-विकास परिषद्	मगनभाअी देसाअी	१३०
भूदान-यज्ञके खिलाफ कुछ आपत्तियां और अुनके जवाब	नरहरि परीख	१३२
हमारी खेती और अुद्योगोंकी मिली-जुली अर्थरचनाकी नींव	च० राजगोपालाचार्य	१३४
मजदूरोंके लिअे सुख-सुविधायें	मगनभाअी देसाअी	१३५
गांधीजीका मजदूर-आन्दोलन	खंडुभाअी देसाअी	१३६
टिप्पणी:		
पहले किसे प्रधानता दी जाय?	म० प्र०	१३४

www.vinoba.in